17ajay_kumar:Layout 1 9/16/2020 3:26 PM Page 275

# दलितों में भी दलित : बात से बात

**अजय कुमार**

पिछले दो दशकों के दौरान उत्तर भारत के दलित आंदोलन की निर्मिति, उसकी सामाजिक-सांस्कृतिक सामग्री और उसके चुनावी प्रतिफलन को दर्ज करने की गहन कोशिशें की गयी हैं। इस बौद्धिक उद्यम के प्रामाणिक विद्वानों में बद्री नारायण एक प्रमुख नाम हैं। गहन फ़ील्डवर्क, समुदायों एवं व्यक्तियों की टूटी-फूटी आवाज़ों, वृत्तांतों और जनतंत्र में उनकी उपस्थिति को रेखांकित करने के लिए उन्होंने एक ऐसी प्रविधि विकसित की है जिसे वे 'बात से बात' की संज्ञा देते हैं। इसमें व्यक्ति या समुदाय को कुछ ऐसी छूट रहती है कि उसके सामाजिक सत्य को प्रखरता से उभरने का मौक़ा मिल जाता है। यह एक ऐसी प्रविधि है जिसमें औपचारिक समाज-वैज्ञानिक प्रशिक्षण सामाजिक सत्य पर हावी नहीं हो पाता। पूर्वी उत्तर प्रदेश के विभिन्न हिस्सों में किया गया उनका फ़ील्डवर्क दलितों में भी सबसे पीछे छूट गये लोगों की कहानी साझा करता है। बद्री नारायण की किताब *खण्डित आख्यान : भारतीय जनतंत्र में अदृश्य लोग* 'दलित' को एक समरूप इकाई में न देखकर इस श्रेणी के अंदरूनी विरोधाभासों, नाकामियों को इंगित करती हैं। इसके साथ ही साथ वह अपने पाठक को छोटे-छोटे गाँवों और पुरवों में बिखरी आधारभूत सफलताओं, सबलीकरण, चेतना के जुझारूपन से भी परिचित कराती है। बद्री नारायण ने इसे न केवल जमा किया है, बल्कि उन सांस्कृतिक अभिप्रायों की विवेचना भी की है जिनसे दलित जीवन-बोध के दैनंदिन रूप संरचित हो रहे हैं।

उन्होंने अनुसूचित जाति के अधीन आने वाले बंसोड़ों, घुमंतू जीवन बिताने वाले समुदायों, मुसहरों के जीवन को नज़दीक से दर्ज करते हुए यह सवाल उठाया है कि वे कौन-सी जगहें हैं जहाँ पहुँच कर दलित आंदोलन चूक जाता है; और कुछ लोगों को पीछे छोड़ कर ख़ुद आगे बढ़ जाता है। लेखक इसके ज़रिये साफ़ कर देता है कि दलित नेताओं की दृष्टि कहाँ पर नहीं जा रही है! इस किताब को पढ़ते समय ऐसा लग सकता है कि बद्री नारायण दलित आंदोलन और बहुजन समाज पार्टी पर यह आरोप लगा रहे हैं कि वह विफल हो गया है। लेकिन, ऐसा है नहीं। इस किताब को पढ़ते समय यह एहसास मज़बूत होता जाता है कि बद्री नारायण दलित आंदोलन पर सवाल करने के साथ उसे और व्यापक एवं समावेशी बनाने की अपील कर रहे हैं। दरअसल, उनका सवाल यह है कि दलित आंदोलन ने अपने ही समाज के एक वंचित हिस्से को बीच रास्ते में क्यों छोड़ दिया? वे लिखते हैं :

> यह अच्छा होता कि दलित जातियों में बढ़ती समरूपता की आलोचना दलित बुद्धिजीवियों के बीच से निकल कर आती जिससे इस आलोचना के मूल्य और स्वीकार्यता में वृद्धि होती। लेकिन जब तक ऐसा नहीं होता है तब तक ग़ैर-दलित बुद्धिजीवियों का काम है कि वे सुनिश्चित करें कि इन

17ajay_kumar:Layout 1 9/16/2020 3:27 PM Page 276



*खण्डित आख्यान : भारतीय जनतंत्र में अदृश्य लोग* (2016)
बद्री नारायण
ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस, नयी दिल्ली
पृष्ठ : 160, मूल्य : 200 रुपये (पेपरबैक)

सीमांतीकृत दलित जातियों की आवाज़ें अकादमिक और बौद्धिक विमर्श में सुनी और दर्ज की जाएँ, जिससे वे भी राज्य की राजनीति एवं विकास में दिखाई पड़ सकें।

वास्तव में 'अनुसूचित जाति' और 'दलित' की श्रेणी पर बात करते समय या उसे राजनीतिक एवं चुनावी यथार्थ में बदलते समय बहुत-सी दलित जातियाँ ओझल होती गयी हैं। इसका एक दुष्परिणाम यह भी हुआ है कि छोटे दलित समूह अकादमिक विमर्शों से भी ग़ायब होते गये हैं। उनकी समस्याओं पर बात नहीं हुई। यह किताब ऐसे समूहों को अकादमिक विमर्श में वापस लाने का प्रयास करती है। इस विमर्श ने इस बात पर कभी पर्याप्त ध्यान नहीं दिया कि राष्ट्रवाद के महाआख्यान को छोटी-छोटी अस्मिताएँ कैसे देखती हैं, वे राष्ट्र की कल्पना कैसे करती हैं, उनकी सांस्कृतिक दावेदारियाँ कैसे परवान चढ़ती हैं और उन पर राज्य-नियंत्रित एजेंसियाँ कैसे क़ब्ज़ा जमाती हैं? अस्सी के दशक में राष्ट्रीय सांस्कृतिक विकास के नाम पर कुछ समूहों के नृत्य-संगीत— हस्तशिल्प को बढ़ावा मिला तो बहुत सारे दलित समुदाय पीछे छूट गये। ये अल्पसंख्यक दलित समुदाय संख्या आधारित चुनावी गोलबंदी में तो पीछे छूटे ही, संस्कृति-संवर्धन के क्षेत्र में भी दरकिनार किये गये। समीक्ष्य किताब इस प्रक्रिया की पड़ताल करती है।

बद्री नारायण बताते हैं कि अदृश्य जातियाँ या समूह राज्य-निर्देशित जनतंत्र में अपनी पहचान का दावा कर सकने में अक्षम हैं। अपने हक़ों के लिए उन्हें जिस भाषा और प्रतिरोध के तरीक़े की ज़रूरत होती है, उसे यह समुदाय सीख नहीं पाए हैं क्योंकि उनके पास राज्य से मोलभाव करने की ताक़त यानी संख्याबल नहीं है। इसलिए राज्य और उसकी संस्थाओं का उनकी तरफ़ ध्यान जाता ही नहीं। संख्याबल में अधिक और अपने सांस्कृतिक इतिहास और पूँजी के साथ चमार और पासी जातियों के साथ केवल तीन-चार दलित उपजातियाँ ही— जो संख्याबल के हिसाब से इन दोनों जातियों के आसपास ठहरती हैं, राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक रूप से आगे बढ़ पाने में सक्षम हो पाई हैं। बद्री नारायण का मानना है कि इन जातियों के पास शिक्षा, सामुदायिक नेतृत्व के अलावा जाति समाज के आंगिक बुद्धिजीवी, जिनको अंतोनियो ग्राम्शी ने ऑर्गेनिक इंटेलेक्चुअल की संज्ञा दी है, मौजूद हैं। इस कारण ये जातियाँ राज्य के साथ मोलभाव कर सकने में सक्षम रहती हैं। आंगिक बुद्धिजीवी और भाषा के सवाल पर बद्री नारायण का मानना है कि किसी भी समाज के आंगिक बुद्धिजीवियों की उस समुदाय के विकास में महत्त्वपूर्ण होती है। आंगिक बुद्धिजीवी राज्य की भाषा का अनुवाद एक ऐसी भाषा में करते हैं जिसे संबंधित समुदाय के सदस्य आसानी से समझ सकते हैं। यही वजह है कि ऐसी जातियाँ राज्य की नज़र में दृश्यमान रहती हैं। सशक्त जातियों की अस्मिता की निर्मिति में इन आंगिक बुद्धिजीवियों की भूमिका बड़ी निर्णायक रही है। वे अपनी-अपनी जाति के इतिहास, जातीय नायकों, जातीय प्रतीकों का अपनी अस्मिता गढ़ने की प्रक्रिया में बख़ूबी इस्तेमाल करते हैं। इसके उलट कमज़ोर और संख्याबल में कमज़ोर जातियाँ अपनी अशिक्षा और आंगिक बुद्धिजीवियों की अनुपस्थिति के कारण मात खा जाती हैं। लिहाज़ा, उनमें जाति समुदाय का नेतृत्व आकार नहीं ले पाता। इसका परिणाम यह होता है कि अस्मिता निर्माण के अपने दावे में ऐसी

17ajay_kumar:Layout 1 9/16/2020 3:27 PM Page 277

जातियाँ राज्य के सामने दृश्यमान नहीं हो पातीं। इस प्रकार कतिपय दलित उपजातियाँ अदृश्यमान होकर दोहरी वंचना का शिकार बन जाती हैं।

### किसे सुनाएँ अपनी बात?

अर्जुन अप्पादुरै के हवाले से बद्री नारायण बताते हैं कि किसी समुदाय की आवाज़ तभी आवाज़ होने का अर्थ हासिल करती है जब उसे जनतंत्र में सुना या पहचाना जा सके। जब समुदाय सुने जाने की क्षमता हासिल कर लेते हैं तो वे कुछ पाने, कोई हसरत पालने की क्षमता भी हासिल कर लेते हैं। इसे एक 'सामान्य राजनीतिक स्तर' के तौर पर देखा जा सकता है जहाँ पहुँच कर कोई समुदाय अपने आपको संगठित करने, प्रतिरोध करने और 'आवेदन की भाषा' सीखने की ओर क़दम बढ़ाता है। कहना न होगा कि दलित उपजातियों का एक बड़ा हिस्सा इन न्यूनतम शर्तों से महरूम खड़ा है। कुछ जातियों जैसे चमार और पासी और कुछ हद तक खटीक, कोरी और बाल्मीकि के पास सदियों के शोषण और अपने उत्पीड़न की कहानी सुनाने वाले साहित्यकारों का बड़ा भण्डार है। इस साहित्य का उन्होंने ख़ुद को सबल बनाने के लिए सफलतापूर्वक प्रयोग किया है, और देश के राजनीतिक और सामाजिक दायरों में अपने लिए जगह तलाश की है। दूसरी तरफ़ छोटी संख्या वाले दलितों का एक बड़ा तबक़ा सीमांत पर खड़ा मुरझा रहा है। उसके पास उसकी अपनी कहानी सुनाने वाले लोग नहीं हैं। बद्री नारायण का मानना है कि भारतीय राज्य का भविष्य इस बात पर निर्भर करेगा कि हाशियाकृत जातियाँ राजनीति में किस सीमा तक दीक्षित और आधुनिकीकृत हो पाती हैं। उनका कहना है कि जब हाशियाकृत दलित जातियाँ राजनीतिक रूप से जागरूक हो जाएँगी और जनतंत्र का दरवाज़ा खटखटाने की हैसियत में आ जाएँगी तो भारतीय जनतंत्र और मज़बूत होकर उभरेगा।

### कांशीराम और बहुजनवाद

उत्तर भारत की बनती-बिगड़ती राजनीति में कांशीराम के बहुजनवाद की चर्चा को इस किताब में ख़ास जगह दी गयी है। उत्तर भारत में आम्बेडकर के बाद की दलित राजनीति की निर्मिति को स्पष्ट करते हुए बद्री नारायण लिखते हैं कि भारत के सामाजिक राजनीतिक परिदृश्य पर जब कांशीराम का उदय हुआ तो उन्होंने अपने-आपको दलितों के सर्वप्रिय नेता के तौर पर प्रस्तुत किया। उन्होंने दलित जातियों के लिए एक पहचान पर आधारित दलित अस्मिता के निर्माण का प्रयास किया। इसके साथ ही उन्होंने दलित शब्द को विस्तार देकर तथा इसमें अन्य पिछड़ा वर्ग, अनुसूचित जातियों को शामिल करते हुए 'बहुजन समाज' का सिद्धांत प्रस्तुत किया। दलित और पिछड़ी जातियों में मण्डल कमीशन के बाद यह एकता क़ायम हो रही थी। कांशीराम ने इस प्रक्रिया को गति प्रदान करते हुए गोलबंदी के साझा उद्देश्य प्रस्तुत किये और सबसे बढ़ कर, बहुजनों को चुनाव के मैदान में ले आये। इसके फलस्वरूप बहुजन बौद्धिक वर्ग के निर्माण के साथ दलित नेतृत्व का भी विकास हुआ। लेकिन कांशीराम की इस बहुजनवाद की राजनीति में जोग, मुसहर, डोम, डोमार, हेला, बंसोर, बहेलिया, खैरहा, कलाबाज़, बलाई, मझवार, हारी, सांसीयाँ, कुंचबंधिया, पथरकटवा, कनखुटवा, मदारी/सपेरा, कोल, बंसफोर, चमरमंगता, नटकंजर, नट और महावत जैसे जाति-समुदाय पीछे छूट गये। आज सरकार या नीति-निर्माताओं के समक्ष इनकी बात रखने वाला कोई और आंगिक बुद्धिजीवी भी नहीं है। इस स्थिति में इन समुदायों की आवाज़ के लिए एक बाहरी एजेंसी के रूप में कोई दूसरा बोलता है जिसमें विदेशी अध्येता, एनजीओ, सामाजिक कार्यकर्ता आदि शामिल होते हैं। इस तरह, ये समुदाय बाहरी एजेंसियों के ज़रिये ही राज्य की नज़र में दृश्यमान हो पाते हैं। आशा की बात है कि बिहार और उत्तर प्रदेश की महादलित और अतिदलित जातियों के कुछ सदस्यों का देश की जनतांत्रिक प्रक्रियाओं में प्रवेश हो रहा है। इससे इन समुदायों की जनतंत्र में भागीदारी बढ़ेगी। फिर भी यह प्रक्रिया काफ़ी लम्बी होगी। और ज़ाहिर है कि इन

17ajay_kumar:Layout 1 9/16/2020 3:27 PM Page 278



समुदायों के लोगों के बीच जागरूकता, चेतना, शिक्षा तथा राजनैतिक गोलबंदी का विकास करने का दारोमदार इन जातियों, समुदायों के आंगिक बुद्धिजीवियों पर होगा।

किताब का पहला अध्याय 'जनतंत्र का भिक्षु गीत' बताता है कि देश की जनतांत्रिक प्रक्रियाएँ राजनीति और शासन के अखाड़े में दावेदारी कर रहे हाशिये के समुदायों को किस प्रकार शामिल करती हैं। इन प्रक्रियाओं का स्वरूप ही कुछ ऐसा है कि उनमें कई छोटी जातियाँ मैदान से बाहर हो जाती हैं। एक अन्य दिक़्क़त यह भी है कि जिन समुदायों को शक्ति मिल गयी है, वे अपने ही समुदाय के अन्य लोगों के साथ इसे साझा नहीं करना चाहते। इस अध्याय के अंतर्गत बद्री नारायण यह भी बताते हैं कि उत्तर प्रदेश में दलितों की मुख्य तीन-चार जातियों के बीच आरक्षण नीतियों के लाभों को लेकर एक प्रतियोगिता-सी चलती रहती हैं। इन जातियों में अधिकतम लाभ चमार जाति के हिस्से में गया है। उसके दूसरे और तीसरे पायदान पर पासी, धोबी एवं अन्य दो-तीन जातियाँ शामिल हैं। ग़ौरतलब है कि उत्तर प्रदेश में एक राजनीतिक जाति के रूप में चमार जाति की निर्मिति इसलिए सम्भव हो पाई क्योंकि आरक्षण का लाभ सबसे पहले इसी जाति को मिला था। यहाँ, अलग से कहना ज़रूरी नहीं है कि इस समुदाय में आंगिक बुद्धिजीवियों और नेताओं का उभार इस परिघटना के बग़ैर सम्भव नहीं हो पाता।

'साँप कहें या रस्सी? जनतंत्र और भारत में पहचान की राजनीति' में बद्री नारायण एक केस अध्ययन के माध्यम से अछूतों के अंदर अछूतपन की निर्मिति को 'नारा मवेशी आंदोलन' के माध्यम से समझाने की कोशिश करते हैं। वे कहते हैं कि चमार समुदाय के पुरुष मुख्य रूप से चमड़े का और स्त्रियाँ नाल काटने का काम करती थीं। नाल को बोलचाल की भाषा में नारा कहते हैं। इन कामों की वजह से चमार अन्य जातियों की निगाह में अछूत और गंदे काम करने वाले हो गये थे। चमारों को जब यह लगा कि ये दोनों काम उनके अछूत होने के कारण हैं तो उत्तर भारत के चमारों ने 1950 के दशक में ही में अपने चमड़े के पेशे को छोड़ने के लिए नारा मवेशी आंदोलन चलाया। जब चमारों ने यह काम करने से मना कर दिया तो तब उत्तर प्रदेश में चमारों के ख़िलाफ़ दमनकारी केंद्र बनाए गये। पुलिस के साथ मिल कर प्रशासन ने सवर्ण जातियों का खुल कर साथ दिया ताकि चमारों के ऊपर हिंसा की जा सके। लेकिन नारा मवेशी आंदोलन के बाद दलितों में एक राजनीतिक जागरूकता आयी और समुदाय के भीतर जातीय अत्याचारों के ख़िलाफ़ एक जुझारू आत्मविश्वास पैदा हुआ। इस मुक़ाम को प्राप्त करने में कतिपय क़ानूनों की भूमिका भी महत्त्वपूर्ण रही। नारा मवेशी आंदोलन के बाद गाँवों में ऊँची जाति के लोग या ग़ैर-चमार इस आंदोलन को घृणा के साथ याद करते हुए इसे चमारों का उत्पात कहते हैं। इस तरह, चमारों ने एक लम्बी लड़ाई के बाद अपनी जाति को ग़ैर-चमड़ा रोज़गार दिलाने में सफलता

नारा मवेशी आंदोलन के बाद गाँवों में ऊँची जाति के लोग या ग़ैर-चमार इस आंदोलन को घृणा के साथ याद करते हुए इसे चमारों का उत्पात कहते हैं। इस तरह, चमारों ने एक लम्बी लड़ाई के बाद अपनी जाति को ग़ैर-चमड़ा रोज़गार दिलाने में सफलता प्राप्त की। इस प्रक्रिया ने उन्हें शिक्षा और जीविका के सम्मानित साधनों के लिए प्रेरित किया। बद्री नारायण रेखांकित करते हैं कि इसके बाद उत्तर प्रदेश के ग्रामीण इलाक़ों में दलितों, ख़ासकर चमारों के बीच एक नये नेतृत्व और जन-जागरण का उभार हुआ। बाद में यही वर्ग बसपा के लिए कैडर के रूप में सामने आया।

17ajay_kumar:Layout 1 9/16/2020 3:27 PM Page 279



प्राप्त की। इस प्रक्रिया ने उन्हें शिक्षा और जीविका के सम्मानित साधनों के लिए प्रेरित किया। बद्री नारायण रेखांकित करते हैं कि इसके बाद उत्तर प्रदेश के ग्रामीण इलाक़ों में दलितों, ख़ासकर चमारों के बीच एक नये नेतृत्व और जन-जागरण का उभार हुआ। बाद में यही वर्ग बसपा के लिए कैडर के रूप में सामने आया। बद्री नारायण यह भी कहते हैं कि जिन चमारों ने अपने परम्परागत पेशे को नहीं छोड़ा था, उनसे चमार जाति के पेशा छोड़ चुके लोग घृणा तो करते थे लेकिन उनके बीच बहुजन समाज पार्टी के लिए वोट माँगने ज़रूर आते थे।

तीसरा अध्याय 'जनतंत्र, अपवंचना और बेदख़ली : उत्तर भारत में हज़ार क़िस्से' मुसहर जैसे समुदायों की जनतंत्र में भागीदारी को विश्लेषित करने का प्रयास करता है। बद्री नारायण का कहना है कि ऐसे वृत्तांत हाशिये के तबक़ों द्वारा जनतांत्रिक अनुभवों की अभिव्यक्तियों को समझने में बड़ी भूमिका निभाते हैं। यह अध्याय मुसहर समुदाय के बीच किये गये गहन क्षेत्र कार्य के आधार पर लिखा गया है। लेखक के मुताबिक़ मुसहर समुदाय को लगता है कि दलित समूहों के बीच उनके दृश्यहीन होने का कारण यह है कि उनका संख्याबल बहुत कम है, इसलिए जनतंत्र में उनकी भागीदारी मानीख़ेज़ नहीं हो पाती। इस अध्याय में बद्री नारायण यह भी बताते हैं कि राज्य इन समूहों को उनकी कम संख्या के कारण अपनी सरकारी नीतियों और योजनाओं के माध्यम से किस तरह वंचित कर डालता है।

'हाशिये की निर्मिति और राजनीति : हाशियाकृत दलित जातियों के आख्यान' शीर्षक चौथा अध्याय राष्ट्र की कल्पना को उन समुदायों के बीच अवस्थित करके देखता है जो अभी तक लोकतंत्र की पहली दहलीज पर भी नहीं पहुँच पाए हैं। उनकी नज़र और कल्पना में 'राष्ट्र की कल्पना' कैसी होगी? उनका राष्ट्र कैसा होगा? इस अध्याय का विमर्श बंजारा, जोगी, भरभुजा, पिंजारा, गरिया, काछी, कसाई, धोबी, सपेरा, बाज़ीगर, खटीक, दर्जी, कुम्हार, छीपी, रंगरेज़, ठठेरा, भिश्ती आदि जैसे अनेक समुदायों और जातियों के लोगों से लिए गये साक्षात्कारों पर आधारित हैं। इसमें इन जातियों से यह जानने की कोशिश की गयी है कि राष्ट्र निर्माण में दलितों और पिछड़े समुदायों की क्या भूमिका थी तथा राष्ट्र के विचार को प्रसारित करने में उनकी क्या भूमिका रही है? बद्री नारायण आगे दिखाते हैं कि दलितों ने अपने विचारों के प्रसार के लिए एक दलित प्रेस का भी निर्माण किया है। आरक्षण से निकला और सामाजिक-राजनीतिक चेतना से परिपूर्ण आंगिक बुद्धिजीवी वर्ग ने दलित मुक्ति के विचार को आगे बढ़ाने के लिए अख़बार और पुस्तिकाएँ छापीं। इसके द्वारा वे एक व्यापक दलित विचार की निर्मिति कर सके। बद्री नारायण बताते हैं कि यह सब कार्य स्थानीय स्तर पर किया जा रहा था। ये पत्र-पत्रिकाएँ दलितों के बीच एक बुद्धिजीवी वर्ग का निर्माण कर रही थीं। और इनमें सामाजिक कार्यकर्ता व समुदाय के नेता आदि लोग शामिल थे।

कांशीराम की इस बहुजनवाद की राजनीति में जोग, मुसहर, डोम, डोमार, डुहेला, बंसोर, बहेलिया, खैरहा, कलाबाज़, बलाई, मझवार, हारी, सांसीयाँ, कुंचबंधिया, पथरकटवा, कनखुटवा, मदारी/सपेरा, कोल, बंसफोर, चमरमंगता, नटकंजर, नट और महावत जैसे जाति-समुदाय पीछे छूट गये। आज सरकार या नीति-निर्माताओं के समक्ष इनकी बात रखने वाला कोई और आंगिक बुद्धिजीवी भी नहीं है। इस स्थिति में इन समुदायों की आवाज़ के लिए एक बाहरी एजेंसी के रूप में कोई दूसरा बोलता है जिसमें विदेशी अध्येता, एनजीओ, सामाजिक कार्यकर्ता आदि शामिल होते हैं। इस तरह, ये समुदाय बाहरी एजेंसियों के ज़रिये ही राज्य की नज़र में दृश्यमान हो पाते हैं।

17ajay_kumar:Layout 1 9/16/2020 3:27 PM Page 280



'इतिहास के संग और इतिहास के बिना : अतीत की दलित पुनर्खोज' शीर्षक अध्याय इस बात की पुख़्ता ख़बर लेता है कि दलितों ने इतिहास में अपनी जगह बनाने के लिए क्या-क्या प्रयत्न किये हैं। यह इतिहास मुख्यधारा के इतिहास से अलग है। इतिहास-निर्माण की इस प्रक्रिया में दलितों ने मुख्यधारा के इतिहास के बरअक्स अपना प्रतिरोधी इतिहास लिखने के लिए अपने नायकों का इतिहास लिखना प्रारम्भ किया। उन्होंने अपने लिए प्रतिरोधी चरित्रों का चुनाव किया और उनके संघर्ष को अपनी वर्तमान स्थिति के साथ जोड़ते हुए उसे जाति अत्याचार के रूप में व्याख्यायित किया। ये सभी दलित नायक एक समय उच्च जाति के शोषण के ख़िलाफ़ लड़े थे। इतिहास-लेखन और निर्माण की इस प्रक्रिया को कांशीराम के आने के बाद अधिक बल मिला। उल्लेखनीय है कि कांशीराम ने बहुजन समाज के निर्माण के लिए ऐसे आख्यानों का बहुतायत से प्रयोग किया था।

'संस्कृति एवं प्रतिनिधित्व : पब्लिक कल्चर की निर्मिति' अध्याय में यह समझने का प्रयास किया गया है कि राज्य ने दलित और हाशियाकृत समुदायों की कला एवं संस्कृति को किस तरह उपेक्षित किया है। यह अध्याय 1980 के दशक में भारतीय राज्य द्वारा लोकसंस्कृति को पुनर्संयोजित करने के उद्देश्य से देश के विभिन्न क्षेत्रों में सात क्षेत्रीय सांस्कृतिक केंद्रों की स्थापना के विश्लेषण को केंद्र में रखकर आगे बढ़ता है। लेखक के अनुसार राज्य ने इसके तहत मुख्यधारा की संस्कृति को बढ़ावा दिया और दलित जातियों की कला एवं संस्कृति की उपेक्षा की। इलाहाबाद स्थित उत्तर-मध्य सांस्कृतिक केंद्र के अध्ययन के ज़रिये बद्री नारायण यह रेखांकित करते हैं कि इन सांस्कृतिक केंद्रों ने दलित समुदायों की लोककलाओं को यथोचित प्रोत्साहन नहीं दिया जबकि इस केंद्र को क्षेत्र की स्थानीय लोककलाएँ को बढ़ावा देना चाहिए था। बद्री नारायण का कहना है कि केंद्र ने उत्तर प्रदेश की दलित जातियों की लोकसंस्कृति और उसके प्रमुख सांस्कृतिक रूपों को नष्ट करने का काम किया। यदि कोई सरकारी सांस्कृतिक नीतियों के इतिहास पर ध्यान दे, तो पता चलता है कि वहाँ दलितों के सांस्कृतिक विकास एवं संवर्धन के लिए बहुत कम गुंजाइश है।

यह किताब बद्री नारायण की अंग्रेज़ी में आयी किताब *फ्रैक्चर्ड टेल्स : इनविज़िबल्स इन इंडियन डेमॉक्रैसी* का हिंदी अनुवाद है, लेकिन इसे पढ़ते हुए क़तई भान नहीं होता कि यह अनूदित किताब है। इस बात के लिए इसके अनुवादक रमाशंकर सिंह साधुवाद के पात्र हैं। अनुवाद सरल और सहज है। यह किताब जनतंत्र में दलितों, दलितों में भी उपेक्षित एवं अदृश्यमान समूहों की गाथा है। यह किताब उन सभी के लिए संग्रहणीय है जो भारतीय राष्ट्र-राज्य को और अधिक उदार, समावेशी एवं सबकी आवाज़ सुनने लायक़ बनाने की मुहिम में शामिल हैं। कहना न होगा कि सार्वजनिक बुद्धिजीवियों, छात्रों, सामुदायिक नेताओं और पत्रकारों के लिए यह एक अनिवार्य किताब है।

# सर्वहारा रातें

उन्नीसवीं सदी
के फ्रांस में
मज़दूर-स्वप्न

ज़ाक राँसिएर

अनुवाद
अभय कुमार दुबे

सर्वहारा रातें
ज़ाक राँसिएर
अनुवाद
अभय कुमार दुबे